भारतीय समाज में जनजातीय पहचान की समस्या एवं समाधान

(एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)

डॉ. रश्मि दुबे
प्राध्यापक समाजशास्त्र
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोतर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश -

प्रत्येक समाज में उसकी अपनी संस्कृति का बहुत महत्व होता है। भारत एक बहुसांस्कृतिक, बहुभाषिक, बहुप्रजातीय, बहुधार्मिक तथा बहुक्षेत्रीय राष्ट्र है। इस देश का संविधान भी राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिये संकल्पित है अतः प्रत्येक सांस्कृतिक समूह को यह अपेक्षा होना स्वाभाविक है कि उसकी संस्कृति भी राष्ट्रीय संस्कृति का अभिन्न अंग बने। जनजातियों के इतिहास से पता चलता है कि वे भारतीय सभ्यता के अभिन्न अंग रहे है। प्राचीन भारतीय सभ्यता को विकसित करने में उनके द्वारा अनेक तत्वों का योगदान दिया गया है। ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही जनजातियों का शोषण प्रारंभ हो गया। प्रकृति व जंगलों पर निर्भर रहने वाली जनजातियों को अलग कर जंगलों पर ब्रिटिश सरकार के वन के ठेकेदारों का अधिपत्य स्थापित होने लगा। जनजातियों को ईसाई धर्म में परिवर्तन की समस्या को भी झेलना पड़ा था औद्योगिक विकास के लाभ ने संपूर्ण जनजातीय क्षेत्र को आक्रांत कर दिया है जनजातीय संस्कृति और प्रकृति में असंतुलन होने लगा। जनजातियों को हमेशा अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष शील रहना पड़ा। अब एकीकृत सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के माध्यम से राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई इस प्रक्रिया के माध्यम से जनजातियों को राष्ट्रधारा से जोड़ने का प्रयास किया गया संविधान में वर्णित प्रावधानों को ध्यान में रखकर जनजातियों को सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक सुरक्षा प्रदान करते उनकी पहचान को सुरक्षित रखने का प्रयास जारी है।

मुख्य शब्द - जनजाति, अस्मिता, संस्कृति, संविधान, जागरण, पुर्ननिर्माण।

सांस्कृतिक व्यवस्था में जनजातियां देश की सांस्कृतिक धरोहर हैं। विभिन्न समाजशास्त्रियों में इन्हें अनेक नामों से संवोधित किया है। जे.एच. हट्टन[1] ने इन्हे आदिम जातियां, वैरियर एल्विन[2] ने इन्हे देश का मूल स्वामी जी. एस. धुरिये[3] ने पिछड़े हुये हिन्दू, तथा आर. के रास[4] ने इनके लिये दलित मानवता आदि संज्ञाओं को उपयुक्त माना है। डी. एन मजूमदार[5] के अनुसार - ''जनजाति परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का एक ऐसा समूह है, जिसका सामान्य नाम है तथा जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग पर निवास करते है, कुछ निषेधाज्ञाओं का पालन करते हैं। ''गिलिन व गिलिन[6] ने जनजाति की व्याख्या इस प्रकार की है। - ''जनजाति समुदाय एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है तथा जिनकी एक सामान्य संस्कृति होती है। भारत एक बहु सांस्कृतिक, बहुप्रजातीय, बहुभाषायी राष्ट्र है विविधता

में एकता ही इस देश की पहचान है। प्रत्येक सांस्कृतिक समूह की यह अपेक्षा होती है कि वह राष्ट्रीय संस्कृति का अभिन्न अंग बन सके। जनजातीय संस्कृति भी सदैव से अपनी पहचान बनाने के लिये अपनी संस्कृति को विरासत के रूप में संजोये हुये है। अनेक तत्व हैं जिनमें जनजातीय संस्कृति की पहचान छिपी हुई है।"

प्रकृति और जनजाति के बीच गहरा संबंध हैं। प्रकृति जनजातियों का भरण पोषण करती रही है और जनजातियां प्रकृति का संपोषण करती रही है। जनजातीय संस्कृति एवं प्रकृति के बीच प्रारंभ से ही आपसी निर्भरता बनी हुई है एक के बिना दूसरे का जीवित रहना असंभव है। आज वैज्ञानिकता के युग में जनजातीय क्षेत्रों में उद्योगों की शुरूआत होने से जनजातीय पहचान की समस्या भी उत्पन्न हो गई है। औद्योगिक विकास के लाभ ने संपूर्ण जनजातीय क्षेत्र को आक्रांत कर दिया है। जनजातीय संस्कृति प्रकृति में असंतुलन उत्पन्न हो रहा है इसके कारण जनजातीय पहचान संकट के दौर से गुजर रही है। जो निम्न प्रकार से स्पष्ट है ।

- प्रत्येक जनजाति संस्कृति अपने साथ धर्म विश्वास व संस्कृति की विरासत लेकर आयी है। किन्ही छोटे मोटे विवाद को छोडकर किसी बड़ी लड़ाई का उदाः जनजातीय क्षेत्रों में नहीं मिलता है। कोल विद्रोह का उदाः जरूर हैं पर यह अंग्रेजों की फूट डालो राज्य करो की नीति का परिणाम था।
- जनजातीय संस्कृति आपस में कोई विवाद की स्थिति नही रखती पर जनजातीय क्षेत्र में शासकों, उत्पीड़क कर्जदारों, अपराधियों लुटेरों के आ जाने से जनजातियों को अपनी संस्कृतिक एवं इतिहास को बचा पाना मुश्किल हो गया है।
- जनजातीय संस्कृति की पहचान उनके बीच पाये जाने वाले समतामूलक समाज से बनती है। जनजातियों में सामाजिक स्तरीकरण नही पाया जाता है स्त्री पुरूषों को उनके समाज में समानता का अधिकार प्राप्त है। ग्राम प्रधान, ग्रामपुजारी अंतर ग्राम प्रधान को प्रतीकात्मक सम्मान मिलता है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप जनजातीय क्षेत्र में भेदभाव, ऊंचनीच की भावना का प्रचार प्रसार हुआ तथा बाहरी दिखावा का रोग लगते ही जनजातीय पहचान संकट में पड़ गयी।
- सामुदायिकता पर आधारित अर्थव्यवस्था जनजातीय संस्कृति की पहचान है जनजातीय क्षेत्र के जमीन, जंगल तथा जल पर संपूर्ण समुदाय का अधिकार होता है। व्यक्तिगत संपत्ति जैसी कोई धारणा इस समाज में नहीं पायी जाती थी परन्तु व्यक्तिगत संपत्ति वाले समाज से संपर्क होने के बाद जनजातियों ने भी यह मान लिया कि जमीन उनकी व्यक्तिगत संपत्ति है। सरकारी नौकरी तथा व्यवसाय के कारण भी जनजातीय सामुदायिक संपत्ति व्यक्तिगत संपत्ति का रूप धारण करते जा रही है। जनजातीय समुदाय महानगरों की और पलायन करते जा रहे है जिससे उनकी पहचान लुप्त होने का खतरा बढ़ रहा है।
- प्रतिवादी धर्म दर्शन जनजातीय संस्कृति की पहचान रही है। इस धर्म में पहाड़ नदी, जंगल, पेड़, पौधा, पशु पक्षी झरना इत्यादि को देवी - देवता का वास स्थान माना गया है। जनजातीय समुदाय में सहिष्णुता पाया जाता है त्यौहार भी सामूहिक स्तर पर मनाते हैं। परन्तु बाह्य प्रभाव के कारण अब जनजातीय धर्म पर भी प्रभाव पड़ा है धर्मान्तरण के कारण जनजातीय धर्म बहुत प्रभावित हुआ है। तथा जनजातीय संस्कृति को अपनी पहचान गंवानी पड़ी है।

परिवर्तन के इस दौर में जनजातीय संस्कृति के जो मूल पहचान तत्व है उन्हें संक्रमण के दौर से गुजरना पड़ रहा है। जनजातियों के समक्ष आज मूल संस्कृति को बचाने की समस्या आ खड़ी हुई है। हिन्दूकरण, इस्लामिकरण, इसाईकरण पश्चिमीकरण, नगरीकरण, औद्योगीकरण के कारण जनजातीयों को पहचान की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। अब जागरूक समाज का यह दायित्व है कि कैसे जनजातीय पहचान की संकट का समाधान ढूंढा जाये इसके लिये निम्न तत्वों पर ध्यान देना आवश्यक है।[8]

- सर्वप्रथम जनजागरण अभियान की शुरूआत करनी होगी। जनजातियों में जन जागृति लाना होगा। उन्हें यह बताना होगा कि कैसे उनकी पहचान संकट में हैं। भारतीय संस्कृति में उनके महत्वपूर्ण योगदान को समझाना होगा। जनजातियों में आत्म विश्वास जगाना होगा। लोककथा, लोग गाथा, लोक गीत आदि के माध्यम से जनजातियों को अपनी संस्कृति के प्रति सचेत करना होगा।
- समन्वय प्रक्रिया का तात्पर्य जागृतजनों को संगठित कर एक वृहद शक्ति के निर्माण से है समन्वय का काम सामाजिक आर्थिक, भाषाई राजनीतिक सभी स्तरों में समन्वय स्थापित करना। समन्वय के आधार पर जनजातीय दोस्त एवं दुश्मन की पहचान करनी होगी उसी के आधार पर समन्वय किया जा सकता है।
- जन आन्दोलन के माध्यम से जनजातीय शोषकों पर दबाव बनाना चाहिये आन्दोलन उग्र रूप या शांति पूर्ण ढंग से भी चलाया जा सकता है। इस प्रकार जन आन्दोलन जनजातीय पहचान व संस्कृति को बचाने में सहायक हो सकता है। आन्दोलन के द्वारा शोषण कर्ता में दबाव बनाया जा सकता है तथा जनजातीय अपने अस्तित्व को बनाये रख सकते हैं झरखंड का आन्दोलन इसका उदाः है उसमें आर्थिक नाकेबंदी की गई थी।
- पुरानी व्यवस्था को पुर्ननिर्मित करके भी जनजातीय संस्कृति की रक्षा की जा सकती है। जो भी संस्कृति संक्रमण के दौर में है उन्हें व्यवास्थाओं के पुर्ननिर्माण के द्वारा सुरक्षा प्रदान की जा सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जनजातीय पहचान संकट की समस्या का समाधान जनजागरण, जनसंगठन, आंदोलन, पुनर्निमाण की प्रक्रिया के द्वारा किया जा सकता है स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी जनजातियों को हमेशा अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष शील रहना पड़ा है जनजातीय लोग साधारण ढंग से रहते है तथा अपने क्षेत्र के जमीन, जंगल और जल को ये अपनी संपत्ति मानते हैं किसी भी बाहरी लोगों का प्रवेश इन्हें पसंद नहीं था परन्तु ब्रिटिश प्रशासन व उसके बाद भारतीय प्रशासकों ने जनजातियों की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाया धीरे - धीरे जंगल जमीन और जल पर से जनजातियों का अधिकार समाप्त होता गया। ब्रिटिश प्रशासक और फिर भारतीय प्रशासक इनकी स्वच्छंदता को समाप्त करने की दिशा में कार्य किये। इनकी जनजातीय शासन व्यवस्था को धीरे-धीरे समाप्त किया गया। जनजातियों को अपने ही क्षेत्र के नदी जंगल और जमीन के स्वामी से हटाकर वन श्रमिक प्रवासी श्रमिक और दैनिक मजदूर बना दिया गया जब जनजातीय वर्ग जागृत हुआ तो उन्होंने संगठित होकर अंग्रेज शासक के विरूद्ध आंदोलन किये क्योंकि ब्रिटिश शासकों द्वारा इनको भारतीय संस्कृतिक की मुख्य धारा से अलग करने का प्रयास किया गया

था परन्तु जनजातियों के विरोध के बाद उन्हें अपराधी कहकर काला पानी (अंडमान) भेजकर जेल की सजा दी गई उन्हें कमजोर करने का प्रयास किया गया।

स्वतंत्र भारत में भी शासकों के साथ इनका अनुभव सकारात्मक नही रहा। स्वतंत्र भारत के शासकों ने भी इनकी पहचान को मिटाने की कोशिश की। जो जनजातीय कभी पुरूषार्थ थे, जंगल के राजा थे, सांस्कृतिक रूप से संपन्न थे, प्रकृति के साथ संघर्ष करके गौरवान्वित होते थे उनकी अस्मिता और पहचान को सदा के लिये खत्म कर दिया गया। जब तक जनजातियों में जागृति आई तब तक ये अपनी पहचान बहुत खो चुके थे फिर भी संगठित हुये तथा अपनी पहचान को बचाने का प्रयास आज तक निरंतर जारी है।

अब एकीकृत सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के माध्यम से राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया आरंभ हुई इस प्रक्रिया के माध्यम से जनजातियों को राष्ट्रधारा से जोड़ने का प्रयास किया गया। संविधान में वर्णित प्रावधानों को ध्यान में रखकर जनजातियों को सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक सुरक्षा प्रदान करते हुये उनकी पहचान को सुरक्षित रखने का प्रयास जारी है यदि हम जनजातियों की पहचान को कायम रखते हुये उनके विकास की बात सोचेंगे तो निश्चित ही राष्ट्र के विकास को एक नई दिशा प्राप्त होगी

संदर्भ -

1 जे.एच. हट्टन, सेन्सस ऑफ इण्डिया वाल्यूम 2, भाग 3, गर्वमेंट प्रेस, शिमला, 1931

2 वेरियर एल्विन, द बैगाज : आक्सफोर्ड प्रेस यूनिवर्सिटी लंदन, 1939

3 जी.एस. धुरिये, द शेड्यूल ट्राइब्ज : पापुलर प्रकाश वाम्बे 1963

4 आर. के. दास, मनीपुर ट्राइबल स्केन स्टडी इन सोसायटी एण्ड चेन्ज : इन्टर इण्डिया पब्लिकेशन नई दिल्ली, 1985।

5 मजूमदार एवं मदान, रेशेज एण्ड कल्चर्स ऑफ इण्डिया : एशिया पब्लिशिंग हाउस बाम्बे 1921।

6 गिलिन व गिलिन, कल्चरल सोशयालाजी : दमेक मिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1950

7 गया पाण्डेय, भारतीय जनजातीय संस्.ति : कंसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 2007।

8 गया पाण्डेय, वही

❖ ❖ ❖